# इकाई 8 उन्नीसवीं सदी के भारत में सामाजिक सुधार आंदोलन

## इकाई की रूपरेखा



## 8.0 उद्देश्य

19वीं शताब्दी में भारत के विभिन्न भागों में अनेकों सुधार-आंदोलन हुए। ये सुधार-आंदोलन भारतीय समाज को आधुनिक विचारों के अनुरूप पुनर्गठन की दृष्टि से हुए। यह इकाई उन सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों का सामान्य व समीक्षात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के साथ ही उन आंदोलनों के महत्व पर भी प्रकाश डालने की कोशिश करती है। हालांकि आंदोलनों के विचारों, कार्यों और नेतृत्व करने वालों के बारे में यह इकाई सिलसिलेवार वास्तविक जानकारी नहीं देती इसके बावजूद यह एक समीक्षा प्रस्तुत करती है जिससे आपको इन आंदोलनों को समझने में सुविधा होगी।
यह इकाई पढ़ने के बाद आप:

- यह जानेंगे कि भारत में ये सुधार क्यों और कैसे शुरू हुए;
- यह समझेंगे कि इन सुधारों के प्रमुख नेतृत्वकर्ता कौन थे—भारतीय समाज की प्रकृति के बारे में उनके क्या विचार थे;
- इन सुधारों के तरीकों और विस्तार क्षेत्र को समझते हुए उनकी कमियों पर रोशनी डाल सकेंगे।

## 8.1 प्रस्तावना

18वीं-19वीं शताब्दी में अंग्रेजों द्वारा भारत पर आधिपत्य ने, भारतीय सामाजिक संस्थाओं की कुछ गंभीर कमजोरियों व खामियों को उभार कर सामने रख दिया। परिणामस्वरूप अनेक व्यक्तियों और आंदोलनों ने सामाजिक सुधार व पुनरुत्थान की दृष्टि से सामाजिक

और धार्मिक परंपराओं में परिवर्तन लाना शुरू किया। ये कोशिशें, जिन्हें संयुक्त रूप से पुनर्जागरण (रेनेसां) के नाम से जाना जाता है, एक जटिल सामाजिक घटना थी। महत्वपूर्ण बात यह है कि यह घटना उस समय घटी जब भारत ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अधीन था।

## 8.2 सुधार क्यों?

चर्चा के लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वह कौन-सी शक्ति थी जिसने भारत में जागरण की लहर को जन्म दिया। क्या यह पाश्चात्य प्रभाव के परिणामस्वरूप हुआ? या यह केवल औपनिवेशिक हस्तक्षेप का जवाब भर था। हालाँकि ये दोनों प्रश्न अंर्तसंबंधित हैं, किंतु भली-भाँति समझने के लिए दोनों को अलग-अलग करना ही अच्छा होगा। इसका एक अन्य आयाम भारतीय समाज में आ रहे उन बदलावों से जुड़ा है जिसके फलस्वरूप नए वर्गों का उदय हो रहा था। इस परिप्रेक्ष्य से सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों को औपनिवेशिक भारत के नए उभरते मध्यम-वर्ग की सामाजिक महत्वाकांक्षा की अभिव्यक्ति के रूप में भी देखा जा सकता है।

सुधार-आंदोलनों पर शुरू में लिखे गए इतिहास-ग्रंथों में पश्चिमी प्रभाव को ही पुनर्जागरण की उत्पत्ति का मुख्य कारण माना गया है। जो प्रारंभिक इतिहास-ग्रंथ मिलते हैं, उनमें से एक जे.एन. फर्खुहार द्वारा लिखे गए इतिहास-ग्रंथ "मार्डन रिलीजिइस मूवमेंट इन इंडिया" (न्यूयार्क, 1924), के अनुसार:

"प्रेरक शक्तियाँ करीब-करीब केवल पाश्चात्य ही हैं यानि अंग्रेजी साहित्य और शिक्षण, इसाई-धर्म, पूर्वी अनुसंधान, यूरोपीय विज्ञान और दर्शन तथा पाश्चात्य सभ्यता के भौतिकवादी तत्व।"

अनेक इतिहासकारों ने इसी विचार को दोहराया तथा इसी की आगे व्याख्या की है। उदाहरण के लिए, चार्ल्स हेइमसाथ, ने न केवल विचारों बल्कि सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों की संगठनात्मक प्रणाली को भी पाश्चात्य प्रोत्साहन से जोड़ा।

19वीं शताब्दी के समाज में हुई पुनर्जागरण की प्रक्रिया पर पाश्चात्य प्रभाव के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। फिर भी यदि हम सुधार की इस पूरी प्रक्रिया को औपनिवेशिक कृपा-मात्र मान लें और अपने आपको सिर्फ इसके सकारात्मक पहलुओं की ओर देखने तक ही सीमित रखें तो हम इस घटना के जटिल चरित्र के प्रति न्याय नहीं कर पाएँगे। सुशोभन सरकार (बंगाल रेनेसां एण्ड अदर एसेज, न्यू देहली, 1970) ने हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया है कि "विदेशियों का आधिपत्य और शासन पराधीन जनता के पुनर्जागरण में सहायता करने की अपेक्षा बाधा ही डालेगा"। 19वीं शताब्दी के पुनर्जागरण के कार्यक्षेत्र और आयामों को सीमित करने में औपनिवेशिक शासन की भूमिका ध्यान देने योग्य है। वह किसी भी सही तथ्य तक पहुँचने की कोशिशों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाती है।

सुधार-आंदोलनों को विदेशी घुसपैठ द्वारा उत्पन्न चुनौती की प्रक्रिया के जवाब के रूप में देखा जाना चाहिए। वे समाज सुधार के प्रयत्न के रूप में तो महत्वपूर्ण थे ही, उससे कहीं ज्यादा उनकी महत्ता औपनिवेशिकता से उत्पन्न नई परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष प्रदर्शन में थी। दूसरे शब्दों में, सामाजिक-धार्मिक सुधार अपने तक ही सीमित रहकर खत्म नहीं हो गए अपितु वे औपनिवेशिकता के विरुद्ध उभरती हुई चेतना का भी अभिन्न अंग थे।

अत: सुधारों को लाने की लालसा के पीछे, औपनिवेशिक शासन के परिणामस्वरूप समाज और इसके संस्थाओं में एक नयापन लाने की आवश्यकता थी। फिर भी सुधार-आंदोलनों के इस रूप ने पुनरुत्थान की जिन प्रवृत्तियों का परिचय दिया वे थीं भारतीय अतीत के गुणगान करने तथा भारतीय सभ्यता व संस्कृति की रक्षा करने की प्रवृत्तियाँ। हालाँकि इन

सब बातों से आंदोलनों का चरित्र संकीर्ण व पतनोन्मुख प्रतीत हुआ फिर भी जनता के बीच सांस्कृतिक चेतना जगाने और उनका विश्वास बढ़ाने में इन्होंने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

## 8.3 सुधार आंदोलन

सुधार की सबसे पहली अभिव्यक्ति बंगाल में राममोहन राय द्वारा शुरू हुई। उन्होंने 1814 में आत्मीय सभा की स्थापना की जो उनके द्वारा 1829 में संगठित ब्रह्म समाज की अग्रगामी थी। सुधार की भावना शीघ्र ही देश के अन्य भागों में भी दिखाई देने लगी। महाराष्ट्र की परमहंस मंडली और प्रार्थना समाज, पंजाब तथा उत्तर भारत के अन्य भागों में आर्य समाज, हिंदू समाज के कुछ मुख्य आंदोलन थे। इस दौरान के कई अन्य धार्मिक व जातिगत आंदोलन जैसे यू.पी. में कायस्थ सभा तथा पंजाब में सरीन सभा थे। पिछड़ी जातियों में भी इन सुधारों ने जड़ पकड़ ली जैसे, महाराष्ट्र में सत्य-शोधक समाज और केरल में नारायण धर्म परिपालन सभा। अहमदिया और अलीगढ़ आंदोलन, सिंह सभा तथा रहनुमाई मजदेआसन सभा आदि ने क्रमशः मुसलमानों, सिक्खों तथा पारसियों में सुधार की भावना का प्रतिनिधित्व किया।

ऊपर दिए गए ब्यौरे से निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं:

i) इनमें से हरेक सुधार-आंदोलन कुल मिलाकर किसी एक या अन्य प्रांत तक सीमित था। ब्रह्म समाज और आर्य समाज की देश के अन्य प्रांतों में शाखाएँ थीं फिर भी वे अन्य स्थानों की अपेक्षा बंगाल व पंजाब में ही ज्यादा प्रसिद्ध थे।

ii) ये आंदोलन किसी एक ही धर्म या जाति तक ही सीमित थे।

iii) इन आंदोलनों की एक अन्य विशेषता यह थी कि वे अलग-अलग समय में देश के अलग-अलग हिस्सों में उभरे। उदाहरण के लिए, बंगाल में सुधार के प्रयत्न 19वीं शताब्दी के आरंभ में शुरू हुए जबकि केरल में इनकी शुरूआत 19वीं शताब्दी के बाद हुई। इन सबके बावजूद उनके उद्देश्य और परिपेक्ष्य काफी हद तक समान ही थे। सभी की चिंता सामाजिक व शैक्षिक सुधारों द्वारा समाज के पुनर्जागरण में थी। भले ही उनकी प्रणालियों में अंतर था।

## 8.4 सुधारों का विस्तार क्षेत्र

19वीं शताब्दी के सुधार-आंदोलन विशुद्ध धार्मिक आन्दोलन नहीं थे बल्कि वे सामाजिक-धार्मिक आंदोलन थे। बंगाल के राममोहन राय, महाराष्ट्र के गोपाल हरि देशमुख (लोकहितवादी) और आंध्र के विरेशलिंगम् जैसे सुधारकों ने धार्मिक सुधारों की वकालत "राजनैतिक फायदों और सामाजिक सुख" के लिए की थी। इन आंदोलनों और उनके नेताओं के सुधार परिपेक्ष्य की विशेषता उनकी इस मान्यता में थी कि धार्मिक और सामाजिक समस्याओं में अंतर्संबंध है। उन्होंने धार्मिक विचारों के प्रयोग द्वारा सामाजिक संस्थानों और उनकी परंपराओं में बदलाव लाने की कोशिश की। उदाहरण के लिए, महत्वपूर्ण ब्राह्मण-नेता केशव चंद्र सेन ने "देवत्व की एकता और मानव मात्र में भाई चारे" की व्याख्या समाज से जातिभेद मिटाने के लिए की थी। सुधार-आंदोलनों की सीमा के अंतर्गत आने वाली प्रमुख समस्याएँ निम्न थीं:

- नारी मुक्ति जिसमें सती-प्रथा, शिशुहत्या, विधवा तथा बाल-विवाह इत्यादि समस्याओं को उठाया गया;
- जातिवाद और छुआछूत;
- समाज के ज्ञानोदय हेतु शिक्षा।

धार्मिक क्षेत्र के मुख्य विषय थे:
- मूर्तिपूजा
- बहुदेववाद
- धार्मिक अंधविश्वास और
- पंडितों द्वारा शोषण

## 8.5 सुधारों की प्रणाली

सामाजिक-धार्मिक परंपराओं में सुधार लाने के लिए विभिन्न प्रणालियों का प्रयोग किया गया जिनमें से चार मुख्य धाराएँ निम्नलिखित हैं।

### 8.5.1 आंतरिक सुधार

आंतरिक सुधार-प्रणाली की शुरुआत राममोहन राय द्वारा की गयी थी और 19वीं शताब्दी में इसका प्रयोग हुआ। इस प्रणाली के प्रचारकों का यह विश्वास था कि किसी भी सुधार को प्रभावशाली होने के लिए यह आवश्यक है कि वह समाज के अंदर से ही हो। परिणामस्वरूप इनके प्रयास लोगों के बीच जागरूकता की भावना पैदा करने पर केंद्रित थे। यह प्रयास उन्होंने किताबें छापकर, विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर बहस व विवाद का आयोजन इत्यादि करके किया। राममोहन राय का सती प्रथा के खिलाफ प्रचार, विद्यासागर के विधवा-विवाह पर लिखे इश्तहार तथा बी.एन. मालाबारी के शादी-विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने के प्रयास इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

### 8.5.2 कानून के द्वारा सुधार

दूसरी प्रवृत्ति कानूनी हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव लाने के विश्वास पर आधारित थी। इस प्रणाली की वकालत करने वाले – बंगाल के केशवचंद्र सेन, महाराष्ट्र के महादेव गोविन्द रानाडे तथा आंध्र प्रदेश के विरेशलिंगम् का मानना था कि सुधार के प्रयास वास्तव में तब तक प्रभावशाली नहीं हो सकते जब तक उन्हें राज्य का सहयोग प्राप्त नहीं हो। इसीलिए उन्होंने सरकार से विधवा-विवाह, कानूनी-विवाह (सिविल मैरिज) तथा अन्य विवाहों की न्यूनतम आयु बढ़ाने जैसे सुधारों को कानूनी समर्थन देने की माँग की। हालाँकि वे यह समझने में भूल कर बैठे कि ब्रिटिश सरकार की सामाजिक सुधारों में रुचि केवल अपने संकीर्ण राजनैतिक व आर्थिक स्वार्थों के कारण थी और वे तभी हस्तक्षेप करते जब इन सुधारों से उनका स्वार्थ अप्रभावित रहता। साथ ही वे यह समझने में भी गलती कर बैठे कि बदलाव के लिए हथियार के रूप में कानून की भूमिका औपनिवेशिक समाज में ही सीमित थी क्योंकि इसे जनता की मान्यता प्राप्त नहीं थी।

### 8.5.3 प्रतीकात्मक बदलाव द्वारा सुधार

तीसरी प्रवृत्ति की कोशिश विशिष्ट विरोधी-गतिविधियों द्वारा प्रतीकात्मक बदलाव लाने की थी। यह प्रवृत्ति "डेरोजिओ" या "यंग बंगाल" तक ही सीमित थी जो सुधार-आंदोलन के बीच क्रांतिकारी धारा का नेतृत्व करती थी। इस समूह के सदस्य, जिनमें से प्रमुखतः दक्षिनारंजन मुखर्जी, रामगोपाल घोष तथा कृष्ण मोहन बनर्जी ने परंपराओं का बहिष्कार किया और समाज की मान्यता प्राप्त मानदंडों के खिलाफ विद्रोह किया। वे "पश्चिम के नए उठते विचारों" की धारा से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने सामाजिक समस्याओं के प्रति समझौता न करने वाली क्रांतिकारी प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया। रामगोपाल घोष ने इस समूह की क्रांतिकारिता को अभिव्यक्त करते हुए घोषणा की -"वह जो तर्क नहीं करेगा धर्मान्ध है, वह जो नहीं कर सकता, बेवकूफ है और जो नहीं करता, गुलाम है।" इन्होंने जिस प्रणाली को अपनाया उसकी मुख्य कमजोरी यह थी कि वह भारतीय समाज की सांस्कृतिक परंपरा को आकर्षित करने में सफल नहीं हो पाई। अतः बंगाल में उभरते नए मध्यम वर्ग ने इसे परंपरा के विरुद्ध पाया और स्वीकार नहीं किया।

### 8.5.4 सामाजिक कार्यों द्वारा सुधार

चौथी प्रवृत्ति सामाजिक कार्यों द्वारा सुधार की थी जैसा कि ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन की गतिविधियों से स्पष्ट है। उन लोगों को बिना सहायक सामाजिक कार्य के विरुद्ध बुद्धिजीवी प्रयासों की सीमित सीमा का स्पष्ट ज्ञान था। उदाहरण के लिए विद्यासागर विधवा विवाह की वकालत सिर्फ प्रवचनों और किताबों के प्रकाशन करके ही खुश नहीं थे। शायद आधुनिक युग में भारत ने उनके रूप में सबसे महान मानवतावादी को जन्म दिया, जिसने अपने को विधवा-विवाह की समस्याओं से जोड़ लिया और अपनी पूरी जिन्दगी, शक्ति और धन इसी कार्य पर लगा दिया। इन सबके बावजूद वह सिर्फ कुछ-एक विधवा - विवाह ही करवा पाए। विद्यासागर का सार्थक रूप से कुछ न प्राप्त कर पाना ही इस बात का द्योतक है कि औपनिवेशिक भारत में सामाजिक सुधारों के प्रभाव की अपनी एक सीमा थी। आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन ने भी सामाजिक कार्य द्वारा सुधार व पुनर्जागरण के विचारों को बढ़ावा देने का प्रयास किया। उनकी सीमा उनकी खुद की वह सीमित समझ थी कि सामाजिक और बौद्धिक स्तरीय सुधार समाज के संपूर्ण चरित्र व संरचना के साथ इस कदर जुड़े हैं कि उसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। मौजूदा व्यवस्था की संकीर्णता ही उन सीमाओं को दर्शाती है जिन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का कोई भी प्रयास लांघ नहीं पाया है। दूसरे सुधार-आंदोलनों की तुलना में इनकी निर्भरता औपनिवेशिक सरकार के हस्तक्षेप पर कम और सामाजिक कार्य को मत के रूप में विकसित करने पर ज्यादा रही।

**बोध प्रश्न 1**

1 निम्नलिखित कथनों को पढ़ें और उन पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएँ।

i) 19वीं शताब्दी के सुधार-आंदोलन विशुद्ध धार्मिक आंदोलन थे।
ii) एक ही समय में अनेक सुधार-आंदोलन देश के विभिन्न भागों में उभरे।
iii) इन सुधार- आंदोलनों का सूत्रपात बंगाल में हुआ।
iv) सुधार-आंदोलन में "यंग बंगाल" ने क्रांतिकारी धारा का प्रतिनिधित्व किया।

2 19वीं शताब्दी में देश के विभिन्न भागों में हुए सुधार आंदोलनों के नाम बताइए।

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

3 19वीं शताब्दी के सुधारकों द्वारा कौन सी विभिन्न प्रणालियाँ अपनाई गई थीं?

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

## 8.6 विचार

जिन दो महत्वपूर्ण विचारधाराओं ने आंदोलनों और उनके नेताओं को प्रभावित किया, वह हैं — बुद्धिवाद और विश्व-धर्म।

## 8.6.1 तर्कवाद

19वीं शताब्दी के सुधारों का सामाजिक-धार्मिक यथार्थ के बुद्धिवादी आलोचकों ने सामान्य चित्रण किया है। शुरुआती ब्रह्म सुधारकों और ''यंग बंगाल'' के सदस्यों ने सामाजिक-धार्मिक समस्याओं के प्रति अत्यधिक विवेकपूर्ण रवैया अपनाया था। अक्षय कुमार दत्त, समझौता न करने वाले बुद्धिवादी ने तर्क दिया कि प्राकृतिक और सामाजिक प्रवृत्ति को मात्र इसकी बनावट व मशीनी प्रक्रिया के स्तर पर अपनी बुद्धि द्वारा समझा जा सकता है तथा इसकी समीक्षा की जा सकती है। विश्वास को विवेक से बदलने का प्रयास किया गया और सामाजिक-धार्मिक परंपराओं को उनकी सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से आँका गया। बुद्धिवादी परिप्रेक्ष्य से ब्रह्म समाज में वेदों की अमोघता का खण्डन हुआ तथा अलीगढ़ में सर सैयद अहमद खान द्वारा स्थापित आंदोलन ने इस्लाम की शिक्षाओं को नए युग की जरूरतों व आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने पर जोर दिया। सर सैयद अहमद खान ने धार्मिक सिद्धांतों को निर्विकार मानते हुए सामाजिक विकास में धर्म की भूमिका पर जोर देते हुए कहा कि यदि धर्म ने समय के साथ कदम नहीं मिलाया और समाज की माँगों को पूरा नहीं किया तो यह प्रभावहीन हो जाएगा जैसा कि इस्लाम के साथ भारत में हुआ है।

यद्यपि सुधारकों ने धर्मग्रंथों की सम्मति ली (जैसा कि राममोहन के सती-प्रथा की समाप्ति के लिए और विद्यासागर के विधवा-विवाह के समर्थन में दिए गए तर्कों से स्पष्ट होता है) किंतु, सामाजिक-सुधार हमेशा धार्मिक भावनाओं के अनुकूल नहीं थे। उस समय की व्याप्त सामाजिक परंपराओं को बदलने के लिए रखे गए दृष्टिकोणों में एक विवेकपूर्ण और निरपेक्ष दृष्टिकोण स्पष्टतः परिलक्षित था। विधवा-विवाह की वकालत तथा बहुपत्नी-प्रथा व बाल-विवाह का विरोध करते समय अक्षय कुमार को किसी धार्मिक विधान की खोज या भूतकाल में उनके प्रचलन की जानकारी हासिल करने में कोई अभिरुचि नहीं थी। उनके तर्क मुख्यतः समाज में होने वाले उनके प्रत्यक्ष प्रभावों पर ही आधारित थे। धर्मग्रंथों पर निर्भर होने की बजाय उन्होंने बाल-विवाह का विरोध करने के लिए डाक्टरी राय का हवाला दिया।

अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा महाराष्ट्र में धर्म पर निर्भरता कम थी। गोपाल हरि देशमुख के लिए सामाजिक सुधारों का धार्मिक विधान सम्मत होना या न होना महत्वहीन था। यदि धर्म ने सुधारों की अनुमति नहीं दी, तो उनका मानना था कि धर्म को ही बदल दो। क्योंकि जो धर्मग्रंथों में लिखा है जरूरी नहीं कि वह समकालीन प्रसंगों के अनुकूल हो।

## 8.6.2 विश्व व्यापकतावाद

19वीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण विचार था– विश्वधर्म जिसका ईश्वर की एकता में विश्वास था और जो सब धर्मों के आवश्यक रूप से एक होने पर जोर देता था। राममोहन राय ने विभिन्न धर्मों को अखिल आस्तिकवाद का राष्ट्रीय अवतार माना और शुरू में ब्रह्म समाज को विश्वधर्म चर्च का दर्जा दिया था। वे सभी धर्मों के मूल तथा सार्वभौमिक नियमों वेदों के ऐकश्वरवाद तथा इसाई धर्म के अधिनायकवाद के रक्षक थे तथा इसके साथ ही उन्होंने हिंदुओं के बहुदेववाद तथा इसाई धर्म के त्रित्ववाद का विरोध किया। सैयद अहमद खान के विचारों में भी लगभग वही गूंज थी : सभी पैगंबरों का एक ही संदेश (विश्वास) था और हर देश और राष्ट्र के अलग-अलग पैगंबर थे। इस मत ने केशवचंद्र सेन के विचारों में अधिक स्पष्टता पाई जिन्होंने ब्रह्म समाज से हटकर सभी बड़े धर्मों की धाराओं को एक ही सूत्र ''नव विधान'' में बाँधने की कोशिश की तथा उसमें सभी प्रमुख धर्मों के विचारों का संश्लेषण करने का प्रयास किया। ''सभी धर्मों में सत्य की तलाश करना हमारा कर्तव्य नहीं बल्कि यह मानना है कि विश्व के सभी प्रस्थापित धर्म सत्य हैं।''

विश्वधर्म मत पूरी तरह दर्शन का विषय नहीं था। इसने राजनैतिक और सामाजिक दृष्टिकोण को तब तक काफी प्रभावित किया जब तक धार्मिक उदारतावाद ने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अपनी जड़ें नहीं जमा लीं। उदाहरण के लिए राममोहन मुसलमान वकीलों को उनके साथी हिंदू वकीलों की अपेक्षा ईमानदार समझते थे और

विद्यासागर ने अपनी मानवतावादी गतिविधियों में मुसलमानों के प्रति भेदभाव नहीं रखा। प्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार बंकिमचंद्र चटर्जी भी, जिन्हें किसी विशेष धार्मिक संबंध से नहीं बल्कि हिंदू धर्म पर उनकी समझ से जोड़ा जाता है, एक व्यक्ति की दूसरे के ऊपर श्रेष्ठता को निर्धारित करने की कसौटी थे। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक पहचान लोगों की सामाजिक दृष्टिकोण को प्रभावित नहीं करती थी बल्कि यह काफी ज्यादा ही प्रभावित करती थी। सुधारकों के विश्वधर्म पर जोर देने का उद्देश्य इस विशिष्ट खिचाव को ही शुरू करना था। हालाँकि औपनिवेशिक संस्कृति तथा विचारधारा की चुनौती में विश्वधर्म एक व्याप्त धर्मनिरपेक्ष प्रवृति को बढ़ावा देने की बजाय धार्मिक उदारतावाद में गुम हो गया।

## 8.7 महत्व

आधुनिक भारत के क्रमिक विकास में 19वीं शताब्दी के सुधार-आंदोलनों ने अति महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने समाज को जनतांत्रिक बनाने, घृणित रिवाजों और अंधविश्वासों को दूर करने, ज्ञान के प्रसार और एक विवेकपूर्ण तथा आधुनिक दृष्टिकोण के विकास का समर्थन किया है। मुसलमानों के बीच अलीगढ़ व अहमदिया आंदोलनों ने इन विचारों की मशाल अपने हाथों में थामे रखी। मिर्जा गुलाम अहमद से प्रोत्साहन पाकर अहमदिया आंदोलन ने 1890 में एक निश्चित स्वरूप धारण कर लिया और "जिहाद" का विरोध तथा लोगों के बीच भाईचारे व स्वतंत्र पश्चिमी शिक्षा की वकालत की। बहुविवाह का विरोध कर तथा विधवा-विवाह का समर्थन कर अलीगढ़ आंदोलन ने मुसलमान समाज में एक नया लोकाचार पैदा करने की कोशिश की। इसने कुरान की स्वतंत्र व्याख्या करने तथा पश्चिमी शिक्षा के प्रचार का समर्थन किया।

हिंदू समाज के बीच हुए सुधार-आंदोलनों ने अनेक सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार किया। इन आंदोलनों ने, बहुदेववाद और मूर्तिपूजा (जो व्यक्ति के विकास मे बाधा उत्पन्न करते हैं), दैवशक्तिवाद तथा धार्मिक प्रधानों की तानाशाही (जो अधिनायकवाद जैसी प्रकृति को दबाती है) की आलोचना की। जाति-प्रथा का विरोध न केवल आदर्श या नैतिकता के आधार पर हुआ, बल्कि इसलिए भी हुआ कि यह समाज में फूट डालने जैसी प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। ब्रह्म समाज के आरंभिक आंदोलनों में जाति-प्रथा का विरोध केवल सैद्धांतिक आधार पर एक निश्चित स्तर तक ही सीमित होकर रह गया, इसके विपरीत आर्य समाज, प्रार्थना समाज और रामकृष्ण मिशन जैसे धार्मिक आंदोलनों ने जाति-प्रथा से समझौता नहीं करके उसकी आलोचना की। जाति-प्रथा की आलोचना करने वालों में अधिकतर निचली जाति के लोग थे। ज्योतिबा फूले और नारायण गुरू द्वारा शुरू किये गए आंदोलनों से ही पता चलता है कि उन्होंने स्पष्ट रूप से जाति-प्रथा के उन्मूलन की वकालत की थी, नारायण दत्त का नारा था:
"मानवता के लि[illegible] केवल एक भगवान और एक जाति"।

स्त्रियों की दशा में [illegible]ार की इच्छा का आधार केवल विशुद्ध मानवीय आधार न होकर समाज में विकास ला[illegible] की खोज का ही एक रूप था। केशवचंद्र सेन ने अपना मत रखा कि: "पृथ्वी पर उस किसी भी देश ने सभ्यता की दौड़ में कभी अपेक्षित विकास नहीं किया, जहाँ की स्त्री-जाति का जीवन अंधकारमय हो।"

इन सभी आंदोलनों में समाज की तात्कालिक स्थिति में प्रचलित-मूल्यों को बदलने का प्रयास देखा जा सकता है। किसी एक तरह से या अन्य तरह से इन आंदोलनों का प्रयास था कि सामंती समाज के प्रमुख मूल्यों को बदलकर बुर्जुवा चरित्र के मूल्यों से समाज का परिचय कराया जाए।

## 8.8 कमजोरियाँ व सीमाएँ

हालाँकि 19वीं शताब्दी के सुधार-आंदोलनों का उद्‌देश्य भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के सामाजिक, शैक्षिक व नैतिक स्तर को ऊपर उठाने का था, किंतु यह उद्‌देश्य कई कमजोरियों व सीमाओं से वाधित हुआ। इन सुधार-आंदोलनों में एक शहरी-प्रवृत्ति भी थी, केवल आर्य समाज को छोड़कर, जिसका कि प्रभाव नीची जातियों के आंदोलनों पर व्यापक रूप से था, दूसरे सुधार-आंदोलनों का क्षेत्र ऊँची जाति व वर्ग तक ही सीमित था। उदाहरण के लिए बंगाल का ब्रह्म समाज "भद्रलोक" की समस्याओं से संबंधित था तो अलीगढ़ आंदोलन ऊँचे वर्ग के मुसलमानों की समस्याओं से। आम जनता साधारणतः इनसे अप्रभावित ही रही। सुधारकों की एक दूसरी सीमा ब्रिटिश राज्य व भारत के प्रति उनके दृष्टिकोण के प्रत्यक्ष बोध में थी। वे भ्रांतिपूर्ण ढंग से यह सोचते रहे कि ब्रिटिश शासन तो भगवान द्वारा नियोजित है और वे ही भारत को आधुनिकीकरण के मार्ग पर ले जायेंगे। चूँकि उनकी भारतीय समाज के आदर्श स्वरूप की संकल्पना 19वीं शताब्दी के ब्रिटेन का प्रतिरूप थी, इसीलिए उन्हें लगा कि भारत को ब्रिटेन जैसा बनाने के लिए ब्रिटिश शासन जरूरी है। इन सुधारकों ने हालाँकि भारतीय समाज के सामाजिक, धार्मिक स्वरूप को अच्छी तरह से समझ लिया था, किंतु इसके राजनैतिक स्वरूप को पहचानने में चूक गए; जो कि अंग्रेजों द्वारा शोषण पर आधारित था।

**बोध प्रश्न 2**

1 निम्नलिखित विषयों पर पाँच पंक्तियाँ लिखें:

क) तर्कवाद

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

ख) विश्वव्यापकतावाद

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

2 नीचे लिखे उद्धरणों को ध्यान से पढ़िये और सही (✓) या गलत (×) का निशान लगायें।

i) सुधारकों की भारतीय सामाजिक-धार्मिक यथार्थ की आलोचना तर्कवाद से रहित नहीं थी।
ii) विश्व-धर्म स्वयं को धार्मिक क्षेत्रीयता से अलग रखने में सफल रहा।
iii) अलीगढ़ आंदोलन ने बहु विवाह-प्रथा का बिरोध किया।
iv) ज्यादातर सुधार आंदोलनों का प्रभाव ऊँची जाति या बर्ग तक ही सीमित था।

## 8.9 सारांश

19वीं शताब्दी के सुधार-आंदोलनों ने द्विस्तरीय कार्य का बीड़ा उठाया। भारतीय समाज की आलोचना हुई। जाति-प्रथा, सती-प्रथा, विधवा-प्रथा, बाल-विवाह आदि संस्थाओं का कड़ा

विरोध हुआ। अंधविश्वासों और धार्मिक रूढ़ि की निंदा हुई। इसके साथ ही भारतीय समाज के आधुनिकीकरण करने का प्रयास हुआ। तर्क, बुद्धि तथा सहिष्णुता के लिए जनमानस से आग्रह किया गया। सुधार-आंदोलनों की गतिविधियों का कार्यक्षेत्र केवल किसी एक धर्म तक ही सीमित न होकर पूरे समाज तक था। हालाँकि उद्देश्य प्राप्ति में उन्होंने विभिन्न प्रणालियों का प्रयोग किया और उनके बीच समय का अंतराल भी रहा, किंतु तात्कालिक परिप्रेक्ष्य और उददेश्य में ध्यान देने योग्य एकता का परिचय उन्होंने दिया। उन्होंने एक खुशहाल, आधुनिक भारत की दृष्टि प्रस्तुत की। उनकी यह दृष्टि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जुड़ गई।

## 8.10 शब्दावली

**पुनर्जागरण** : भूत को पुनर्जीवित करने की चेष्टा।
**प्रतिगामी** : पिछड़ा हुआ।
**सतीप्रथा** : विधवा को उसके मृत पति के साथ चिता पर जलाने की प्रथा।
**बहुदेववाद** : बहुत से देवी-देवताओं की पूजा में आस्था।

**विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने का विधेयक:** लड़कियों की शादी की उम्र 12 साल तक बढ़ाने के लिए पारित किया गया एक विधेयक। तिलक सहित कई कांग्रेसियों ने इस विधयेक का विरोध किया था।

**अमोघ** : अचूक
**एकेश्वरवाद** : एक ही ईश्वर की अराधना
**जिहाद** : काफिरों के खिलाफ धार्मिक युद्ध
**अधिनायकवाद** : केंद्रीयकरण की विचारधारा
**आस्तिकवाद** :भगवान में विश्वास करना
**त्रि-तत्ववाद** :ईसाई विश्वास: त्रय-परमेश्वर – यानी पिता, संतान तथा पवित्र आत्मा का एक ही परमेश्वर में मिलान (द यूनियन ऑफ फादर, सॅन एण्ड होली स्प्रिट इन वन गॉड)

## 8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 i) × ii) × iii) ✓ iv) ✓
2 भाग 8.3 देखिए
3 भाग 8.5 पढिए तथा अपने **उत्तर** लिखिए

**बोध प्रश्न 2**

1 उपभाग 8.6.1 और 8.6.2 देखिए
2 i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ✓